

बढ़ रहे हैं गर्मी के जानलेवा हमले

संध्या रायचौधरी



आने वाले समय में मौसम में बहुत तेज़ी से परिवर्तन होगा जिसका सबसे ज़्यादा असर गर्मी के महीनों में दिखाई देगा। एक ताज़ा शोध बताता है कि पिछले 15 सालों से विश्व भर में ग्लोबल वार्मिंग की दर घटने के बावजूद जानलेवा गर्मी पड़ने की घटनाएं लगातार बढ़ी हैं। असहनीय होती गर्मी से अब पहले से कहीं ज़्यादा जानें जा रही हैं।

दुनिया के कई हिस्सों में गर्मी के मौसम में पारे का जानलेवा स्तर तक पहुंचना भी जलवायु परिवर्तन का एक चेहरा है। इससे इंसान भी मारे जा रहे हैं और कई फसलें भी खराब हो रही हैं। ऊर्जा से लेकर पानी तक हर संसाधन पर दबाव बढ़ा है। कई देशों के वैज्ञानिकों ने मिलकर *नेचर क्लाइमेट चेंज* नामक जर्नल में लिखा है कि डेटा दिखाता है कि ग्लोबल वार्मिंग के इस अंतराल में धरती पर गर्मी के अतिरेक के मामले लगातार बढ़े हैं।

2012 में रूस में चली लू की चपेट में आकर 25 हज़ार से ज़्यादा लोग मारे गए थे, वहीं 2010 में युरोप में भी गर्म हवाओं से करीब 20 हज़ार से ज़्यादा लोगों की जानें गई थीं। पिछले साल पाकिस्तान में पारा 55.5 डिग्री सेल्सियस तक चला गया था। 1942 के बाद यह एशिया में दर्ज किया गया सबसे ज़्यादा तापमान है।

वैज्ञानिकों के मुताबिक 20वीं सदी की तुलना में अब धरती की सतह के गर्म होने की औसत गति कम हुई है। समुद्रों के ज़्यादा गर्मी सोखने, सूरज की किरणों को धरती पर पहुंचने से रोकने वाला प्रदूषण और कम ज्वालामुखी विस्फोट इसके प्रमुख कारण बताए जा रहे हैं। बीते सालों में कई देशों ने कोयला, पेट्रोलियम जैसे जीवाश्म ईंधन से सौर ऊर्जा जैसे अक्षय ऊर्जा के स्रोतों की तरफ रुख किया है।

रिपोर्ट के मुताबिक धरती के जिन इलाकों में साल में 10, 30 और 50 दिन बहुत ज़्यादा गर्मी पड़ती है, उनकी संख्या 1997 से लगातार बढ़ती गई है। आर्कटिक जैसे कई क्षेत्रों में बीते सालों में यह संख्या साल दर साल दुगुनी दर से बढ़ी है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इस बात पर

लगातार शोध किए जा रहे हैं कि आखिर गर्मी के जानलेवा थपेड़ों के बढ़ने का क्या कारण है। उनके अनुसार एक संभावना यह है कि समुद्रों ने वायुमंडल से गर्मी को सोख कर ग्लोबल वार्मिंग की दर को तो कम कर दिया है लेकिन धरती पर उसका कोई खास असर नहीं पड़ा है। शोध की प्रमुख लेखिका सोनिया सेनकिरात्ने लिखती हैं कि इस अत्यधिक गर्मी की प्रवृत्ति के रुकने की कोई वजह हमें नहीं दिखाई दे रही है। शायद वायुमंडल में गैसों का लगातार बढ़ना एक वजह हो सकती है। ज्यूरिख के इंस्टीट्यूट फॉर एटमॉस्फियरिक एंड क्लाइमेट साइंस की इस रिपोर्ट में ग्रीन हाउस गैसों के बढ़ते उत्सर्जन से मौसम पर पड़ रहे असर का भी ज़िक्र है। पिछले साल विश्व मौसम संगठन की समीक्षा में कहा गया था कि दुनिया के 56 देशों में 2001 से 2012 के बीच गर्मी के नए रिकार्ड बने जबकि सिर्फ 14 देशों में सर्दी ने रिकॉर्ड तोड़े।

जलवायु परिवर्तन करने वाली खतरनाक ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा में रिकॉर्ड इज़ाफा हुआ है। डब्ल्यूएमओ के मुताबिक पृथ्वी के वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा 141 फीसदी बढ़ चुकी है। आर्थिक मंदी और कुछ देशों द्वारा उत्सर्जन कम करने के बावजूद वैश्विक तस्वीर देखें तो हमारे वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड की सांद्रता बढ़ते हुए रिकॉर्ड स्तर पर जा रही है।

वैज्ञानिक मौजूदा स्थिति की तुलना 1750 (औद्योगिकरण की शुरुआत) से पहले के समय से करते हैं। पश्चिमी देशों में इसके बाद ही कारखाने लगने शुरू हुए थे। औद्योगिकरण से पहले की तुलना में आज वातावरण में 141 फीसदी ज़्यादा कार्बन डाईऑक्साइड है। मीथेन की मात्रा 260 फीसदी और नाइट्रस ऑक्साइड की मात्रा 120 फीसदी बढ़ी है। साफ है कि मौजूदा हालात में ग्लोबल वॉर्मिंग बढ़ने से नहीं रोका जा सकता है।

विशेषज्ञों ने चेतावनी दी है कि अगर ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कम नहीं किया गया तो इंसान लाचार होकर

बार-बार बड़े तूफान, लुप्त होते जीव, कम होता पानी, डूबती ज़मीन और पिघलती बर्फ देखेगा। कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी के समुद्र विज्ञानी पीटर वैडहेम्स कहते हैं, इसका असर अगले 100 साल तक दिखाई पड़ेगा। लंबे समय से जीवाश्म ईंधन के अथाह इस्तेमाल की कीमत हमें चुकानी होगी। हो सकता है कि हम ग्लोबल वॉर्मिंग को आपदा में बदलने से रोक पाने वाली सीमा के भी पार आ गए हैं। वैडहेम्स के मुताबिक अब अगर कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन कम भी किया जाए तो भी बात नहीं बनने वाली। बीते 10 सालों को ही देखा जाए तो 2011 और 2012 में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा औसत से ज़्यादा तेज़ी से बढ़ी है। आशंका है कि यह रफ़्तार 2015-16 तक जारी रहेगी। पश्चिमी युरोप, जापान और अमरीका के अलावा बाकी दुनिया अभी आर्थिक और औद्योगिक तौर पर पिछड़ी हुई है। एक के बाद एक देश उद्योगों के ज़रिए बराबरी की कोशिश कर रहे हैं। विशेषज्ञों को लगता है कि आर्थिक तरक्की की इस दौड़ में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाना मुश्किल है। आशंका है कि इस शताब्दी के अंत तक धरती का तापमान 4.6 डिग्री सेल्सियस बढ़ जाएगा।

पश्चिमी अंटार्कटिका जितना माना गया था उससे दुगनी रफ़्तार से गर्म हो रहा है। इस जानकारी ने यह चिंता बढ़ा दी है कि सैन फ्रांसिस्को से शंघाई तक सागर में पानी का स्तर और बढ़ेगा, जो ज़मीन को डुबो देगा। एक रिसर्च की रिपोर्ट बताती है कि अंटार्कटिका के बार्ड रिसर्च स्टेशन में सालाना औसत तापमान 1950 के दशक के बाद से अब तक 2.4 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ चुका है। रिपोर्ट के मुताबिक विश्व औसत की तुलना में अंटार्कटिका में तापमान तीन गुना ज़्यादा प्रभावित हुआ है।

इस वृद्धि ने बर्फ पिघलने का डर बढ़ा दिया है। अगर पश्चिमी अंटार्कटिका की सारी बर्फ पिघल जाए तो समुद्र का जल स्तर 3.3 मीटर बढ़ जाएगा। वैसे इस पूरे बर्फ को पिघलने में कई सदियों लगेंगी। ओहायो युनिवर्सिटी ने बताया है कि बर्फ की पट्टी का पश्चिमी हिस्सा उम्मीद से दुगनी गर्मी झेल रहा है। गर्मियों में जब तापमान बढ़ता है तो अंटार्कटिका में बर्फ की चादर पिघलती है। यह हालत तब

है जबकि पूरे साल अंटार्कटिका के ज़्यादातर हिस्से का तापमान बेहद ठंडा रहता है। बांग्लादेश से लेकर तुवालु तक के लिए समुद्र में जल स्तर बढ़ने का मतलब खतरा है। पिछली सदी में समुद्र का जलस्तर करीब 20 सेंटीमीटर बढ़ा है। संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण जानकारों के पैनल का अनुमान है कि अगर ग्रीनलैंड और अंटार्कटिका में बर्फ पिघली तो इस सदी में समुद्र का तल 18-59 सेंटीमीटर तक बढ़ेगा।

उत्तरी गोलार्ध के हिस्से भी तेज़ रफ़्तार से गर्म हुए हैं। अंटार्कटिक प्रायद्वीप में किनारों पर मौजूद कई हिमखंड हाल के वर्षों में टूट कर पिघल गए हैं। एक बार ये हिमखंड पिघल जाएं तो उनके पीछे के ग्लेशियर भी टूटकर समुद्र में आ मिलते हैं और जल स्तर बढ़ता जाता है। पश्चिमी अंटार्कटिका के लिए पाइन आइलैंड ग्लेशियर उतना ही पानी समुद्र में लेकर आता है जितना कि युरोप की राइन नदी लेकर आती है।

पश्चिमी अंटार्कटिका में बड़े स्तर पर सतह के पिघलने का एक उदाहरण 2005 में सामने आया था। गर्मियों में बढ़ता तापमान इस तरह से सतहों के बार-बार और बड़े स्तर पर पिघलने की घटनाएं दोहरा सकता है। पश्चिमी अंटार्कटिका हर साल समुद्र के जल स्तर में 0.3 मिलीमीटर इज़ाफा कर रहा है। यह ग्रीनलैंड के 0.7 मिलीमीटर की तुलना में कम है।

मौसमी बदलाव ने भले ही दुनिया की सेहत खराब कर दी हो लेकिन आर्कटिक क्षेत्र में यह जहाज़ उद्योग के लिए वरदान साबित हो सकता है। यहां बर्फ की जो मोटी तहें पिघल रही हैं, उनसे जहाज़ों के लिए युरोप से नए रास्ते खुल सकते हैं और आर्थिक ताकत का भी नया समीकरण बन सकता है क्योंकि अगर नॉर्वे और रूस के बीच इधर से जहाज़ चलने लगें, तो तेल और प्राकृतिक गैस के परिवहन में नया आयाम जुड़ सकता है।

विश्व मौसम संस्थान के मुताबिक इस साल सितंबर तक 34 लाख वर्ग कि.मी. बर्फ पिघल गई है, जो 2007 के बाद सबसे ज़्यादा है। यह खतरनाक है मगर आर्थिक फायदा देखने वाले इसे जहाज़ उद्योग के लिए एक मौके के तौर पर देख रहे हैं। (स्रोत फीचर्स)